

समयसार, कलश १०२। कलश है न ?

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः ।

तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥१०२॥

हेतु,.. कलश का उत्तर देते हैं कि बन्ध के कारण का हेतु पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव एक ही है। बन्ध का हेतु एक ही है, शुभ और अशुभभाव दोनों एक ही हैं। शुभ से पुण्य और अशुभ से पाप - ऐसे दो भेद उसमें नहीं है। भाव में, हों! शुभ और अशुभभाव दो हेतु अज्ञानरूप हैं; इसलिए हेतु में कोई अन्तर नहीं है।

स्वभाव,.. (अर्थात्) इसका पुद्गल (में) बन्धन पड़े कि शुभभाव से पुण्य बँधे और अशुभ (भाव से) पाप (बँधे), वह सब पुद्गल-स्वभाव है। उसमें भी कुछ भेद है नहीं। अनुभव.. शुभ का अनुभव भी दुःखरूप है और अशुभ का अनुभव भी दुःखरूप

फल है। आहाहा! उनमें कहीं आत्मा का आनन्द नहीं। शुभपरिणाम का फल सातावेदनीय आदि आवे, परन्तु उसमें भी सुखरूप कल्पना है; वह है दुःख; इसलिए फल में अन्तर नहीं है। शुभ का फल अच्छा और अशुभ का फल खराब – ऐसा कुछ नहीं है। दोनों का फल एक ही है। आहा!

आश्रय.. शुभ-अशुभ बन्ध का कारण, वह बन्ध के आश्रय से है; शुभ कोई मोक्ष के आश्रय और अशुभ, बन्ध के आश्रय है – ऐसे आश्रय में भेद नहीं है। आहाहा! दोनों (का) एक ही आश्रय है। शुभ और अशुभभाव दोनों बन्ध के आश्रय ही होते हैं।

इन चारों का (अर्थात् ये चार प्रकार से).. (सदा अपि) सदा ही.. आहाहा! (अभेदात्) अभेद होने से.. चारों सब अभेद-एक ही है। आहाहा! (न हि कर्मभेदः) कर्म में निश्चय से भेद नहीं है;.. इस कारण कोई पुण्य ठीक है और पाप अठीक है अथवा पुण्य का बन्धन होता है, वह ठीक है और पाप का अठीक है – ऐसा है नहीं। (तद् समस्तं स्वयं) इसलिए, समस्त कर्म स्वयं... कर्म जो है, शुभ-अशुभभाव या बन्धन, वह स्वयं निश्चय से... (बन्धमार्ग-आश्रितम्) बन्धमार्ग के आश्रित हैं... आहाहा! ये व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, दया, आदि भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय (आदि) भाव, ये दोनों भाव, बन्ध के आश्रित हैं। आहाहा! ऐसा है। लोगों को खटक पड़ती है।

शुभ-अशुभभाव दोनों बन्धरूप हैं और दोनों बन्धन का कारण हैं। दोनों शुभ-अशुभ भाव अज्ञानरूप हैं। आहाहा! बन्ध का कारण हैं, अतः कर्म एक ही माना गया है... कर्म तो एक ही प्रकार (है)। 'कर्म' शब्द लिया था न? इसलिए। बाकी फिर चार प्रकार किये। कर्म एक ही मानना योग्य है। यह १४५ गाथा का कलश कहा।

गाथा-१४६

अथोभयं कर्माविशेषेण बन्धहेतुं साधयति ह्य

सोवर्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।

बंधदि एवं जीवं सुह-मसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि यथा पुरुषम् ।

बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥१४६॥

शुभमशुभं च कर्माविशेषेणैव पुरुषं बध्नाति बन्धत्वाविशेषात् काञ्चनकालायस-
निगलवत् ॥१४६॥

अब यह सिद्ध करते हैं कि-दोनों-शुभाशुभकर्म, बिना किसी अन्तर के बन्ध के कारण हैं:-

ज्यों लोह की त्यों कनक की जंजीर जकड़े पुरुष को।

इस रीत से शुभ या अशुभ कृत, कर्म बांधे जीव को ॥१४६॥

गाथार्थ : [यथा] जैसे [सौवर्णिकम्] सोने की [निगलं] बेड़ी [अपि] भी [पुरुषम्] पुरुष को [बध्नाति] बाँधती है और [कालायसम्] लोहे की [अपि] भी बाँधती है, [एवं] इसी प्रकार [शुभम् वा अशुभम्] शुभ या अशुभ [कृतं कर्म] किया हुआ कर्म [जीवं] जीव को [बध्नाति] (अविशेषतया) बाँधता है।

टीका : जैसे सोने की और लोहे की बेड़ी बिना किसी भी अन्तर के पुरुष को बाँधती है क्योंकि बन्धनभाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है, इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्म बिना किसी भी अन्तर के पुरुष को (-जीव को) बाँधते हैं क्योंकि बन्धभाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है।

गाथा - १४६ पर प्रवचन

अब (शुभ-अशुभ) दोनों कर्म अविशेषरूप से... अर्थात् सामान्यरूप से (कुछ अन्तर बिना) बन्ध के कारण हैं:- आहाहा! ऐसा सिद्ध करते हैं:- १४६ (गाथा)।

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।

बंधदि एवं जीवं सुह-मसुहं वा कदं कम्मं॥१४६॥

ज्यों लोह की त्यों कनक की जंजीर जकड़े पुरुष को।

इस रीत से शुभ या अशुभ कृत, कर्म बांधे जीव को॥१४६॥

टीका : जैसे सोने की और लोहे की बेड़ी बिना किसी भी अन्तर के पुरुष को बाँधती है.. सोने की बेड़ी हो या लोहे की हो। आहाहा! ऐसे शुभभाव हो या अशुभ (भाव) हो, दोनों बन्धन का कारण है। उनमें एक भी धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! क्योंकि बन्धनभाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है,... शुभ और अशुभभाव, सोने और लोहे की बेड़ी की अपेक्षा से, शुभ सोने की बेड़ी, अशुभ लोहे की बेड़ी है। आहाहा! बन्धन में कोई अन्तर नहीं है, दोनों बाँधते हैं।

इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्म... कार्य-भाव, भाव या बन्धन। मूल यहाँ कर्म से उठाया है न, इसलिए कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि यह तो कर्म की बात है; भाव की बात कहाँ है? - ऐसा कहते हैं; परन्तु यह हेतु, स्वभाव, (अनुभव, आश्रय - ऐसे) चार रूप तो स्पष्ट किया है। आहाहा! शुभ और अशुभ कर्म बिना किसी भी अन्तर के पुरुष को (-जीव को) बाँधते हैं... चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का भाव हो या चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, काम, क्रोध, राग-द्वेष का भाव हो; दोनों भाव, बन्धन का कारण है। आहाहा! दोनों में एक भी धर्म और धर्म का कारण है नहीं।

मुमुक्षु : भावबन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये स्वयं दोनों भावबन्ध ही है। शुभ-अशुभभाव, भावबन्ध है और जड़ है, वह द्रव्यबन्ध है। भावबन्ध एक जाति है और जड़बन्ध है-एक जाति है। पुद्गल का फल, एक जाति है। आहाहा!

मुमुक्षु : भावबन्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये पुण्य-पाप के भाव, वही भावबन्ध है। यह कहेंगे। यह तो उसमें आया न! स्वयं समस्त कर्म स्वयं बन्धमार्ग के आश्रित हैं। यह (१०२) कलश में आ गया। ये शुभ-अशुभभाव स्वयं ही बन्ध के मार्ग के आश्रित है। आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है, इसलिए ऐसा कोई कहता है कि शुभ-अशुभभाव, व्यवहाररत्नत्रय करने से निश्चय होता है, बहुत जगह यह विपरीतता हो गयी है। आवे, कहीं लेखन में आवे भी सही, परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है (कि) निमित्त ऐसा था। वह वस्तु स्वयं आत्मा को कोई मदद करती है या धर्म का कारण है - ऐसा नहीं। आहाहा!

क्योंकि बन्धभाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है। चाहे तो शुभभाव हो या अशुभभाव हो, दोनों बन्ध का कारण है। बन्ध के कारण की अपेक्षा में कोई अन्तर नहीं। व्यवहार से अन्तर कहे, परन्तु यह परमार्थ से अन्तर है नहीं, अर्थात् वास्तव में अन्तर नहीं। व्यवहार से कहते हैं कि अशुभभाव से शुभ (भाव) ठीक (है), ऐसा। आहाहा! परमार्थ से-वास्तविक रीति से तो ये शुभ और अशुभ दोनों भाव, बन्ध के कारण (हैं), और एक ही रूप से बन्ध है। आहाहा! १४६ (गाथा पूर्ण) हुई। १४७ (गाथा)।

गाथा-१४७

अथोभयं कर्म प्रतिषेधयति-

तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसर्गं ।
साहीणो हि विणासो कुशील-संसर्ग-रायेण ॥१४७॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां च रागं मा कुरुत मा वा सन्सर्गम् ।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशील-सन्सर्ग-रागेण ॥१४७॥

कुशीलशुभाशुभकर्मभ्यां सह रागसन्सर्गौ प्रतिषिद्धौ बन्धहेतुत्वात् कुशीलमनोरमा-
मनोरमकरेणुकुट्टनीरागसन्सर्गवत् ॥१४७॥

अब दोनों कर्मों का निषेध करते हैं:-

इससे करो नहिं राग वा संसर्ग उभय कुशील का।
इस कुशील के संसर्ग से है, नाश तुझ स्वातंत्र्य का ॥१४७॥

गाथार्थ : [तस्मात् तु] इसलिए [कुशीलाभ्यां] इन दोनों कुशीलों के साथ [रागं] राग [मा कुरुत] मत करो [वा] अथवा [संसर्गम् च] संसर्ग भी [मा] मत करो, [हि] क्योंकि [कुशीलसंसर्गरागेण] कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से [स्वाधीनः विनाशः] स्वाधीनता का नाश होता है (अर्थात् अपने द्वारा ही अपना घात होता है)।

टीका : जैसे कुशील-मनोरम और अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ (हाथी का) राग और संसर्ग बन्ध (बन्धन) का कारण होता है, उसी प्रकार कुशील अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग बन्ध के कारण होने से, शुभाशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग का निषेध किया गया है।

गाथा - १४७ पर प्रवचन

१४७, अब दोनों कर्मों का निषेध करते हैं:- चाहे तो शुभभाव हो या अशुभ हो, दोनों बन्ध का कारण होने से दोनों का निषेध किया जाता है। आहाहा!

तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसर्गं ।
साहीणो हि विणासो कुसील-संसर्ग-रायेण ॥१४७॥

इससे करो नहीं राग वा संसर्ग उभय कुशील का।

इस कुशील के संसर्ग से है, नाश तुझ स्वातंत्र्य का॥१४७॥

ऐसा कहते हैं। जैसे कुशील (खराब)-मनोरम और अमनोरम हथिनी.. मनोरम (अमनोरम अर्थात्) अनुकूल और प्रतिकूल। हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ (हाथी का) राग और संसर्ग बन्ध (बन्धन) का कारण होता है,.. जो हथिनी मनोरम-अनुकूल हो और प्रतिकूल हो; दोनों हथिनी बन्ध का कारण है। यह गड्डे में डालकर पकड़ते हैं। दोनों राग और संसर्ग बन्ध का कारण होता है। उसके प्रति प्रेम और उसका संसर्ग करना, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि चाहे तो यात्रा का भाव हो या चाहे तो दुनिया के व्यापार के, हिंसा के (भाव हो)... आहाहा! सम्मेदशिखर की यात्रा का भाव हो और दुकान का माल बेचने का भाव (हो), दोनों भाव, बन्ध के कारण हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टान्त (दो तो ख्याल आवे)।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त... आहाहा! यहाँ तो सामान्य बात करते हैं। ऐसे देखो तो सम्मेदशिखर की यात्रा का भाव और दुकान पर बैठकर व्यापार का भाव, यह अशुभ है, वह (पहला) शुभ है, दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा काम है। दुकान पर बैठकर धन्धे का भाव और (यह सब) छोड़कर बेचारा सम्मेदशिखर की यात्रा को जाए (कि) भाई! सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए आठ दिन की निवृत्ति लो। ऐ 'चिमनभाई'! दोनों (भाव) विकल्प हैं, बापू! शुभ और अशुभ दोनों राग हैं; इस मनोरम और अमनोरम हथिनी की तरह दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! कठिन काम पड़े लोगों को। दुकान का धन्धा

छोड़कर कोई गौशाला का काम करने जाए, किसी की सेवा के लिए जाए, तो भी कहते हैं कि दोनों भाव समान हैं !

प्रश्न : हमारी स्वाधीनता क्या रही ?

समाधान : स्वाधीनता का नाश होता है। स्वतन्त्रता, शान्ति रही नहीं। यह तो अब आता है न! शान्ति.. ज्ञायकभाव.. वीतराग-स्वभाव से भरा भगवान आत्मा! उसकी वीतरागता की पर्याय को शुभ और अशुभभाव से चोट पड़ती है। आहा! 'कर्ता-कर्म अधिकार' में आया नहीं? जो वीतराग पर्याय-उदासीन पर्याय उत्पन्न होनी चाहिए, उसे छोड़कर शुभाशुभभाव उत्पन्न करे, वह कर्ता-कर्म बन्ध का कारण है। आहाहा! 'कर्ता-कर्म अधिकार' की ६९-७० (गाथा)। आहाहा!

प्रश्न : पुण्य-पाप और कर्ता-कर्म अधिकार में अन्तर क्या ?

समाधान : एक ही सरीखा है। कर्ता-कर्म में कर्ता-कर्म सिद्ध करना है; यहाँ पुण्य-पाप के भाव दोनों समान (हैं), यह सिद्ध करना है। पहले में कर्ता (अर्थात्) करनेवाला और कर्म, दोनों अभेद हैं (-ऐसा सिद्ध करना है)। अर्थात् कि—अज्ञान कर्ता और पुण्य-पाप उसका काम, यह कर्ता-कर्म एक है, अज्ञान है। आत्मा स्वभाविक का कर्ता और उसका विकारी कार्य - ऐसे भेद नहीं। आहाहा! परन्तु निवृत्ति कहाँ है? निवृत्ति नहीं होती। आहाहा! यह तो बड़े दूसरे भाग की बात है न!

कुशील अर्थात् शुभाशुभ... ये भी कुशील है। देखा? कुशील अर्थात् खराब ऐसी हथिनी की तरह (और) मनोरम-अनुकूल हथिनी हो परन्तु हाथी को तो दोनों बन्ध का कारण है। वैसे तुझे शुभभाव मनोरम लगे और अशुभराग अमनोरम लगे, (तो भी) दोनों बन्ध के कारण हैं। आहा! लोग इसमें से बहुत दूसरा निकालते हैं कि यह तो निश्चय की बात है, परन्तु व्यवहार आता है, वह कारण है। व्यवहार आवे, वह कारण है। बापू! यह तो व्यवहार आवे, उसे साधन कहा है, वह तो ज्ञान कराया है।

निश्चय से तो 'दुविहं पि मोक्खहेउं ज्ञाणए पाउणदि जं मुणी णियमा।' (द्रव्यसंग्रह, गाथा-४७) शुभ-अशुभ विकल्प है, वह तो आर्तध्यान और रौद्रध्यान है। आहाहा! यहाँ तो आत्मा, शुभाशुभभाव से रहित ज्ञायकभाव में ध्यान में एकाग्र हो, तब उसे

सच्चा-निश्चयमोक्षमार्ग उत्पन्न होता है। आहाहा! और उस समय राग कोई बाकी है, अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई है; इसलिए उसे व्यवहारमोक्षमार्गरूप से कहा गया है। ऐसी वस्तु है। यह 'दुविहं पि मोक्खहेउं ज्ञाणए पाउणदि' ऐसा कहा है, उसका सार पूरा (कह दिया)। आहाहा!

यहाँ तो जिसे आत्मकल्याण करना हो, उसके लिए बात है। उसे शुभ और अशुभभाव, दोनों अकल्याण का कारण है; इसलिए उसे हथिनी की तरह कुशील-ऐसा शुभ... ओहोहो! और अशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग... वचन से भी उसका परिचय-संसर्ग ऐसा न करना कि 'यह ठीक है' - ऐसा वचन से भी नहीं कहना। आहा! राग और संसर्ग बन्ध के कारण होने से,.. उसमें बहुत परिचय करने से, राग और बहुत परिचय करने से। संसर्ग बन्ध के कारण होने से, शुभाशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग का निषेध किया गया है। लो! यहाँ तो शुभाशुभ कर्म लिया है, हों! परन्तु उनके कारण भाव (आदि) चारों आ गये। आहाहा!

वे इसमें से विशेष निकालते हैं न! ऐसा कि, यहाँ कर्म लिया है, कहीं शुभाशुभभाव (नहीं कहा), परन्तु यह स्पष्टीकरण किया न! अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं किया। (तो कहते हैं) अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा कहा है, परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य तो कर्म ही कहते हैं। परन्तु इस कर्म में सब आ गया - शुभाशुभभावकर्म, जड़कर्म, उसका फल और बन्धमार्ग का आश्रय। इस शुभ का आश्रय, वह बन्धमार्ग का आश्रय है। आहाहा!

दुनिया से विलक्षण लगे और इस दुनिया का उत्साह...! आहाहा! उसमें से अटक कर रुक जाना। आहाहा! वहाँ अटकता है, उसका रुकना (और) यहाँ आकर रुक जाना। आहाहा! शुभ-अशुभभाव दोनों एक ही प्रकार हैं, इसलिए उनका राग (नहीं करना) और वाणी से भी कुछ ठीक है, ऐसा नहीं कहना। उनका परिचय-संसर्ग ही नहीं करना। आहाहा! काया और वाणी और मन—तीनों से (संसर्ग नहीं करना)। आहाहा!

राग और संसर्ग का निषेध किया गया है। क्योंकि राग और संसर्ग बन्ध के कारण होने से,.. ऐसा। राग और संसर्ग बन्ध के कारण होने से शुभ-अशुभ कर्मों का निषेध किया गया है। आहाहा! यहाँ तो जरा भी आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा कुछ कहा नहीं।

निश्चय में जरा मदद करे, ऐसा कुछ कहने में नहीं आया और कहीं-कहीं कहने में आया हो, वह तो साधक को बतलाया है। अन्दर साधन-राग कौन है? जहाँ निश्चय साध्य प्रगट हुआ है, तब वहाँ राग कौन था? ऐसी नैगमनय से बात करे और या वर्तमान है, उसे उपचार से करे। पूर्व के राग से हुआ, ऐसा कहे तो वह नैगमनय से कहा और वर्तमान राग है, उससे कहे तो वह उपचार से कहा। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : स्वाधीनता का नाश होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाधीनता का नाश होता है। इसका अर्थ यह कि अपना घात अपने से होता है। पुण्य और पाप में स्वाधीनता, स्वतन्त्रता (का नाश होता है)। उसे बन्ध कहा न! बन्ध का कारण है; इसलिए उसका अर्थ (इसका घात होता है) वह बन्ध का कारण है अर्थात् स्वाधीनता का नाश है, ऐसा। स्वतन्त्रता जो शुद्धता होनी चाहिए, (वह नहीं हुई)। आहाहा! स्वाधीनता का नाश हो, अपना घात अपने से हो, इसका अर्थ यह, ऐसा। घात होता है न! उसे बन्ध में डाल दिया। आहाहा! शुभ-अशुभभाव दोनों (में) शान्ति का घात होता है, आत्मा के स्वभाव की शुद्धपर्याय का घात होता है। आहाहा! अर्थात् उत्पन्न नहीं होती, उसका घात होता है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव उत्पन्न होते हैं, वहाँ शुद्धभाव उत्पन्न नहीं होता, इसलिए उसका घात होता है। उस स्वाधीनता का नाश है, ऐसा। आहाहा! कठिन पड़े जगत को।

मुमुक्षु : साधक को शुभभाव के समय शुद्धि बढ़ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बढ़ती नहीं। वह तो दूसरी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन है, दृष्टि शुद्ध (स्वभाव) पर पड़ी है, शुद्ध पर विशेष (स्थिर होता है), उसे जो शुभभाव है, उसमें जरा अशुभ (भाव) घटा है, ऐसा। उसके (लिए यह बात है), तथापि शुभभाव है, वह है तो बन्ध का कारण परन्तु शनैः शनैः (क्रम-क्रम से) वह मोक्षमार्ग में आता है न! शनैः अर्थात् स्वभाव की दृष्टि हुई है। शुभाशुभभाव बन्ध का कारण है। त्रिकाल शुद्ध चैतन्यमूर्ति वह मुक्ति का कारण है, ऐसा अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ है। उसके लिए यह बात की है। वहाँ शुभ है, उसमें अशुभ घटता है। मिथ्यात्व टला है और समकित हुआ है, इस अपेक्षा से उस शुभ में अशुभ घटता है, ऐसा कहा है परन्तु जहाँ अभी शुभ और अशुभ

को दो मानता है, वह तो अभी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे तो शुभ में अशुभ घटता भी नहीं, क्योंकि मूल अशुभ मिथ्यात्व तो पड़ा है। शुभभाव और अशुभभाव दोनों (में) अन्तर है, ऐसा मिथ्यात्वभाव तो पड़ा है। आहाहा!

बहुत जगह ऐसा आता है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में आता है। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। वह तो है, उसका ज्ञान कराया है, बापू! आहाहा! लोगों को जयसेनाचार्यदेव की टीका ठीक पड़ती है। तब ज्ञानसागर ने उसका अर्थ किया न! जयसेनाचार्य की टीका का (अर्थ किया) आहाहा! और विद्यासागर ने भी वह किया है, उसने उसमें से सब पद लिए हैं। आहाहा! बापू!

ध्रुव स्वयं अन्दर स्वतन्त्र चैतन्य (द्रव्य है)। राग हो, आवे, होता है परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य है अथवा जरा भी लाभदायक है, ऐसा नहीं है। ज्ञानी को भी राग आता है, अशुभराग आता है, शुभराग आता है परन्तु अहितकर जानकर, हेय जानकर, दुःखरूप जानकर दृष्टि में से छोड़ता है। आहाहा! उसे दृष्टि में से छोड़ता है। वह अस्थिरता में आ गया है। आहाहा!

गाथा-१४८-१४९

अथोभयं कर्म प्रतिषेध्यं स्वयं दृष्टान्तेन समर्थयते -

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसगं राग-करणं च ॥१४८॥
एमेव कम्म-पयडी-सील-सहावं च कुच्छिदं णादुं ।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसगं सहाव-रदा ॥१४९॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः कुत्सितशीलं जनं विज्ञाय ।
वर्जयति तेन समकं सन्सर्गं राग-करणं च ॥१४८॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा ।
वर्जयन्ति परिहरन्ति च तत्सन्सर्गं स्वभाव-रताः ॥१४९॥

यथा खलु कुशलः कश्चिद्ब्रह्मस्ती स्वस्य बन्धाय उपसर्पन्तीं चटुलमुखीं मनोरमामनोरमां
वा करेणुकुट्टिनीं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तथा सह रागसन्सर्गो प्रतिषेधयति, तथा किलात्माऽरागो
ज्ञानी स्वस्य बन्धाय उपसर्पन्तीं मनोरमामनोरमां वा सर्वामपि कर्मप्रकृतिं तत्त्वतः कुत्सितशीलां
विज्ञाय तथा सह रागसन्सर्गो प्रतिषेधयति ॥१४८-१४९॥

अब, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ही दृष्टान्तपूर्वक यह समर्थन करते हैं कि
दोनों कर्म निषेध्य हैं:-

जिस भाँति कोई पुरुष, कुत्सितशील जन को जानके।
संसर्ग उसके साथ त्यों ही, राग करना परितजे ॥१४८॥
यों कर्मप्रकृति शील और स्वभाव कुत्सित जानके।
निज भाव में रत राग अरु संसर्ग उसका परिहरे ॥१४९॥

गाथार्थ : [यथा नाम] जैसे [कोऽपि पुरुषः] कोई भी पुरुष [कुत्सितशीलं]
कुशील अर्थात् खराब स्वभाववाले [जनं] पुरुष को [विज्ञाय] जानकर [तेन समकं] उसके

साथ [संसर्गं च रागकरणं] संसर्ग और राग करना [वर्जयति] छोड़ देता है; [एवम् एव च] इसी प्रकार [स्वभावरताः] स्वभाव में रत पुरुष [कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं] कर्मप्रकृति के शील-स्वभाव को [कुत्सितं] कुत्सित अर्थात् खराब [ज्ञात्वा] जानकर [तत्संसर्गं] उसके साथ संसर्ग [वर्जयन्ति] छोड़ देते हैं [परिहरन्ति च] और राग छोड़ देते हैं।

टीका : जैसे कोई जंगल का कुशल हाथी अपने बन्धन के लिये निकट आती हुई सुन्दर मुखवाली मनोरम अथवा अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी को परमार्थतः बुरी जानकर उसके साथ राग या संसर्ग नहीं करता, इसी प्रकार आत्मा अरागी ज्ञानी होता हुआ अपने बन्ध के लिये समीप आती हुई (उदय में आती हुई) मनोरम या अमनोरम (शुभ या अशुभ) - सभी कर्मप्रकृतियों को परमार्थतः बुरी जानकर उनके साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता।

भावार्थ : हाथी को पकड़ने के लिये हथिनी रखी जाती है, हाथी कामान्ध होता हुआ उस हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ राग तथा संसर्ग करता है, इसलिए वह पकड़ा जाता है और पराधीन होकर दुःख भोगता है, जो हाथी चतुर होता है, वह उस हथिनी के साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता; इसी प्रकार अज्ञानी जीव कर्मप्रकृति को अच्छा समझकर उसके साथ राग तथा संसर्ग करते हैं, इसलिए वे बन्ध में पड़कर पराधीन बनकर संसार के दुःख भोगते हैं, और जो ज्ञानी होता है, वह उसके साथ कभी भी राग तथा संसर्ग नहीं करता।

गाथा - १४८-१४९ पर प्रवचन

१४८-१४९ (गाथा) अब, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ही दृष्टान्तपूर्वक यह समर्थन करते हैं कि दोनों कर्म निषेध्य हैं:- पहला तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सिद्ध किया था। आहाहा!

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।

वज्जेदि तेण समयं संसग्गं राग-करणं च ॥१४८॥

एमेव कम्म-पयडी-सील-सहावं च कुच्छिदं णादुं ।

वज्जन्ति परिहरन्ति य तस्संसग्गं सहाव-रदा ॥१४९॥

जिस भाँति कोई पुरुष, कुत्सितशील जन को जानके।
 संसर्ग उसके साथ त्यों ही, राग करना परितजे॥१४८॥
 यों कर्मप्रकृति शील और स्वभाव कुत्सित जानके।
 निज भाव में रत राग अरु संसर्ग उसका परिहरे॥१४९॥

आहाहा! जैसे कोई जंगल का कुशल हाथी.. वन का हाथी, परन्तु चतुर, कुशल। अपने बन्धन के लिये निकट आती हुई सुन्दर मुखवाली मनोरम अथवा अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी को परमार्थतः बुरी जानकर.. आहाहा! जैसे कोई कुशल.. चतुर। वन का हाथी। वन का चतुर हाथी, कुशल अपने बन्धन के लिये निकट आती हुई सुन्दर मुखवाली.. अर्थात् अनुकूल हथिनी सुन्दर मुखवाली मनोरम अथवा अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी को परमार्थतः बुरी जानकर.. आहाहा! वह कुशल हाथी दोनों को बुरा जानकर उसके साथ राग या संसर्ग नहीं करता,.. जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत (टीका में) ऐसा आया है कि वचन को। मन, वचन और काया तीन डालें हैं संसर्ग में। परमार्थतः बुरी जानकर.. हथिनी मनोरम-अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, आहाहा! उसके साथ राग या संसर्ग नहीं करता,..

इसी प्रकार आत्मा अरागी ज्ञानी होता हुआ.. वह (दृष्टान्त में) कुशल हाथी (लिया था)। यह अरागी आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप है। आत्मा वीतरागस्वरूप है, उस प्रकार से वीतरागी पर्याय को करता हुआ। अरागी ज्ञानी होता हुआ.. आहाहा! अपने बन्ध के लिये समीप आती हुई (उदय में आती हुई).. कहते हैं, भले पुण्य का उदय आवे, आहाहा! या पाप का उदय आवे, दोनों को समकिति बन्ध का कारण जानता है। पुण्य का उदय आया, इसलिए ऐसा कि पैसा हुआ और यह सब कुटुम्ब और कबीला जमा.. उसे वह दुःखरूप लगता है। आहाहा!

अरागी ज्ञानी होता हुआ अपने बन्ध के लिये समीप आती.. (अर्थात्) उदय - कर्म का उदय आवे न! सत्ता में से समीप आया न! मनोरम या अमनोरम (शुभ या अशुभ)-सभी कर्मप्रकृतियों को... आहाहा! चाहे तो पुण्य की प्रकृति का उदय आओ या चाहे तो पापप्रकृति का उदय आओ, (सब) आवे। (दोनों को) परमार्थतः बुरी जानकर... दोनों प्रकृति की बात ली है। उसमें भाव आ गया। परमार्थतः बुरी जानकर

उनके साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता। आहा!

भावार्थ : हाथी को पकड़ने के लिये हथिनी रखी जाती है, हाथी कामान्ध होता हुआ.. (अर्थात्) काम के वश होता हुआ। हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ राग तथा संसर्ग करता है.. राग करता है और उसके साथ भाषा करता है। हाथी ऐसे गुल.. गुल.. गुल.. भाषा बोलता है न! ऐसे अनुकूल बोले। आहाहा! इसलिए वह पकड़ा जाता है और पराधीन होकर दुःख भोगता है,.. आहाहा! वह हाथी हथिनी की अनुकूलता में.. आहाहा! या प्रतिकूलता हो, लो! दोनों के साथ राग और संसर्ग करे (तो) वह पकड़ा जाता है और पराधीन होकर दुःख भोगता है,.. आहाहा!

जो हाथी चतुर होता है.. आहाहा! वह उस हथिनी के साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता;.. भले अनुकूल मनोरम हथिनी हो तो भी वह चतुर कुशल हाथी उसके साथ राग और अनुकूल भाषा नहीं बोलता। हाथी बोलता है न, गुल.. गुल.. गुल.. ऐसे हथिनी के लिए अनुकूल भाषा (बोलता है)। आहाहा! (परन्तु चतुर हाथी) राग तथा संसर्ग नहीं करता;.. आहाहा!

इसी प्रकार अज्ञानी जीव कर्मप्रकृति को अच्छा समझकर उसके साथ राग तथा संसर्ग करते हैं.. आहाहा! अज्ञानी कर्म की पुण्य प्रकृति अनुकूल देखकर, अभी हमें सब सुख है, कर्म का उदय अनुकूल है, कुटुम्ब-कबीला सब अनुकूल है, धन्धा भी बहुत अच्छा चलता है... आहाहा! मुनीम भी सब अच्छे मिले हैं।

मुमुक्षु : प्रामाणिक मुनीम मिले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रामाणिक मुनीम मिले हैं। परन्तु उसमें क्या धूल हुआ? आहाहा! मुनीम प्रामाणिक है, लड़के भी चतुर जगे हैं, लड़कियाँ भी अच्छी जगह गयी (विवाही) है, सब प्रकार से अभी सुखी हैं! ऐसा अज्ञानी अज्ञान में ऐसे विकार के राग में और वाणी की अनुकूलता में पकड़ जाता है। आहाहा! अब ऐसे तो स्पष्ट लेख हैं, तथापि जहाँ हो वहाँ वापस विपरीतता करते हैं।

अज्ञानी जीव कर्मप्रकृति को अच्छा समझकर.. पुण्य का उदय निरोगता। साता का उदय, यशकीर्ति का उदय.. आहाहा! बाहर की सब सामग्री जैसी चाहिए वैसी हाथी,

घोड़ा और हाथी घोड़े के सब सामान सोने के और चाँदी के! आहाहा! अज्ञानी उस कर्मप्रकृति के फल को भला जानकर। वह तो कर्मप्रकृति हुई। तेरा स्वभाव कहाँ आया वहाँ। आहाहा! कर्मप्रकृति को अच्छा समझकर उसके साथ राग तथा संसर्ग करते हैं.. लोग भी ऐसा (कहें कि).. आहाहा! अभी हम सुखी हैं। सब प्रकार से धन्धा-पानी में उल्टा डालें तो भी सुल्टा पड़ता है। चिमनभाई! आहाहा! ऐसा कि पासा उल्टा भी डालने जाएँ, वहाँ सुल्टे पड़ते हैं, हमारे अभी ऐसी अनुकूलता है। परन्तु किसकी है? आहाहा! लड़के भी बड़े करोड़पति के घर की लड़कियों से विवाह किया है। पाँच-पच्चीस लाख रुपये लेकर आयी है। सब प्रकार से हमारे अभी सुखी हैं। दुःखी है (कहते हैं)। आहाहा! है दुःखी और मानता है सुखी! आहाहा! वहाँ परसन्मुख के झुकाववाला भाव ही दुःख है। आहाहा! यह ठीक है। आहाहा!

अकेला रोगी व्यक्ति कोई घर में (हो), दूसरा व्यक्ति न हो, घर न हो, झोंपड़ी न हो। आहाहा! एक व्यक्ति को देखा था, 'वडीया' में! सवेरे जल्दी जंगल (दस्त के लिए) जाते थे। अकेला (था) और रोग था, कोई घर नहीं, मकान नहीं, स्त्री-पुत्र नहीं। किसी का मकान था, उसमें कौने में बैठा-बैठा रोता था। जल्दी सवेरे दिशा को जावें न! वढीया... वढीया, वहाँ किसी मकान के कोने में गरीब व्यक्ति (था)। हमें देखकर (ऐसा होवे न कि) पुण्यवन्त है। इसलिए एकदम रोने लगा। अकेला व्यक्ति और सर्दी-ठण्डी, अन्धकार, कोई नहीं और रोगी। एक मकान के कोने में बैठा-बैठा (रोता था)। आहाहा! रहने का मकान नहीं, सोने का स्थल-जमीन। आहाहा! शरीर में रोग (होवे), उसे लोग प्रतिकूल मानते हैं और पाँच-दस लाख का बड़ा मकान हो, ऐसे हवा डाले, गर्मी आवे वहाँ पंखा (चालू करे), अभी तो पंखा किया है न! बिजली का पंखा फिरे, फर..र.. फर..र..! हवा आवे हवा! बाहर की हवा की करते अन्दर की हवा आवे। हा..श..! ऐसा जो मानता है कि हम कुछ मजे में हैं.. आहाहा!

वह अज्ञानी जीव प्रकृति को भली समझकर। कोई भी प्रकृति का फल (हो), उसमें अनुकूल होवे क्या? ओहोहो! औदारिकशरीर मिले, भगवान को तो पहले से परम औदारिकशरीर मिले, लो ठीक! तीर्थकर को तो पहले से परम औदारिकशरीर (होता है)। आहार होता है और निहार नहीं होता। आहाहा! पानी होता है (पीते हैं) और पेशाब नहीं

होता। आहाहा! तथापि उसमें कहीं ठीक है, ऐसा वे नहीं मानते। आहाहा! तीर्थकर जीव तीन ज्ञान लेकर आता है। कितने ही क्षायिक सम्यग्दर्शनादि लेकर (आते हैं)... आहाहा! ऐसी स्थिति में कहीं उन्हें ठीक है, यह परम औदारिकशरीर मिला और भोजन लेते हैं, तथापि दस्त नहीं; पानी पीते हैं, तथापि पेशाब नहीं; रोग आदि के लिए दया नहीं। जन्म से, हों! आहाहा! परन्तु वे समकिति भगवान तो माता के गर्भ में समकित लेकर आते हैं। आहाहा! कहीं ऐसी चीज़ को 'यह ठीक है' - ऐसा नहीं मानते। आहाहा! इतनी अनुकूलता! माता के गर्भ में भी वहाँ देव उन्हें रहने का स्थान अनुकूल कर देते हैं। आहाहा! वे बाहर आवें, तब इतनी अनुकूलता, इन्द्राणी खड़ी हो। तीन ज्ञान के धनी हैं। तीन ज्ञान में सब ख्याल आता है। कहीं उसमें ठीक है... आहाहा! अनुकूल है, ऐसा वे नहीं मानते। आहाहा! और समकिति अकेला अविवाहित, मकानरहित, रोगी, क्षयरोग लागू पड़ा हो.. आहाहा! तथापि समकिति उसे 'खराब है' ऐसा नहीं मानता। आहाहा! है, वह ज्ञान में ज्ञात होता है, ज्ञान जानता है कि ऐसा है, बस! बाकी कुछ है नहीं। आहाहा! इतना सब अन्तर।

(जैसी) दृष्टि वैसी सृष्टि! जिसे चैतन्य भगवान पर दृष्टि पड़ी है, उसे बाह्य के अनुकूल और प्रतिकूलता के ढेर हों तो भी उसे सृष्टि अर्थात् शान्ति की उत्पत्ति होती है। आहाहा! अज्ञानी को अनुकूलता के ढेर हों तो (भी) दृष्टि मिथ्या है, इसलिए उनमें उसे प्रेम के बाण लगे हैं। पच्चीस वर्ष से सुखी हैं, शरीर में रोग नहीं आया, सोंठ लगायी नहीं है। सोंठ भी नहीं लगायी है, ऐसा निरोग (शरीर) है। परन्तु उसमें क्या हुआ? आहाहा! वह सब पुद्गल का खेल है, प्रभु! आहाहा! आहाहा! परन्तु दोनों में धर्मी को कहीं अनुकूल-प्रतिकूल है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! क्योंकि जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु वीतरागमूर्ति जहाँ दृष्टि में आया, उसे यह अनुकूल और प्रतिकूल में कहीं दोनों में अन्तर है, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा!

तब उसमें कहा है न! जब तक शरीर में रोग न आवे, इन्द्रियाँ शिथिल न पड़ें, जीर्णता न आवे, (तब तक आत्महित कर ले)। वह तो इसके पुरुषार्थ की कमजोरी की उग्रता बतलाने को (कहा है)। उससे जरावस्था में (आत्महित) नहीं होता और रोग अवस्था में नहीं होता, वह प्रतिकूल है इसलिए (नहीं होता, ऐसा नहीं है)। आहाहा! आता है न? मोक्षपाहुड़ में आता है, छहढाला में आता है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, भाई!

आहाहा! ...ये शब्द श्वेताम्बर के दशवैकालिक के हैं। ...इन्द्रियाँ हीन न पड़े, रोग की वृद्धि दिखायी न दे.. आहाहा! अवस्था जीर्ण न हो, इन्द्रियाँ शिथिल न पड़े... आहाहा! वहाँ धर्म कर लेना। उसका अर्थ यह कि इतनी अनुकूलता में धर्म होता है, ऐसा है? फिर प्रतिकूलता में धर्म नहीं होता? यह तो एक वैराग्य से बात की है। वापस इसका अर्थ ऐसा ले कि देखो! अनुकूलता में धर्म कर ले, प्रतिकूलता में धर्म नहीं होगा। यहाँ तो कहते हैं कि प्रतिकूलता और अनुकूलता दोनों एक जाति है। आहाहा!

पैर चल सके नहीं, कदम भर सके नहीं। हमारे जीवराजजी अभी देखो, खाट पर पड़े हैं, पैर भर सकते नहीं, चल सकते नहीं। प्रतिदिन सवेरे जाकर एक बार कहते हैं, ज्ञायकस्वरूप है, भाई! ध्यान रखना, बापू! यह क्या है, वह भूल जाना। जोर बताते हैं, हों! बारम्बार मेरा अकेला पारिणामिकभाव है, वह मैं याद करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! डेढ़ महीने से ऐसे पड़े हैं, पेशाब और दस्त (शय्या में होते हैं)। वह प्रतिकूलता है, इसलिए मुझे धर्म नहीं हो सकता और उसके प्रति द्वेष हो... आहाहा! ऐसा नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि कर्मप्रकृति अच्छी, बाहर में ऐसी अनुकूलता आवे.. आहाहा! एक को जहाँ हुकम करे, वहाँ हजार उपस्थित हों। क्या चाहिए प्रभु! पानी? उसकी जगह बर्फ दे, आईसक्रीम दे। कहो, चिमनभाई! तुम्हारे सेठ का तुमने बहुत सब देखा होगा, नहीं? आहाहा! पचास करोड़ रुपये! अभी बड़ा व्यक्ति वैष्णव, मुम्बई! आहाहा! परन्तु क्या है उसमें? जहाँ हो वहाँ दुकान, मुनीम अच्छे, आमदनी अच्छी देते हैं। हांगकांग में दुकान, मकान, अमुक में दुकान, अमुक में दुकान। मधु, शान्तिभाई का भाई कहता था, उनकी दुकान हांगकांग में है। रामदास की। दुकान का नाम केवलचन्द न? क्या था? कीलाचन्द देवचन्द। वहाँ हांगकांग में भी है। वहाँ लाखों की आमदनी है। उसकी आमदनी बड़ी होगी, पचास करोड़ रुपये? परन्तु उससे क्या? अरे! उसमें आत्मा को क्या? आहाहा! अज्ञानी अनुकूलता में राग करता है और प्रतिकूलता में द्वेष करता है। वह दोनों तो प्रकृति के फल हैं। उनमें एक में राग और एक में द्वेष (करना), इसका अर्थ क्या? कहते हैं। आहाहा!

इसलिए वे बन्ध में पड़कर.. आहाहा! यह अनुकूलता के शरीर और वाणी आदि साधन चाहिए, प्रकृति के सब फल अनुकूल हों और शरीर में रोग (हों) और वाणी बोली नहीं जा सके, बाहर के प्रतिकूल साधन (होवें).. आहाहा! अकेला व्यक्ति हो... परन्तु नरक का नारकी लो न! सातवें नरक का नारकी! आहाहा! सम्यग्दृष्टि (होवे, उसे भी)

इतनी प्रतिकूलता (होवे) कि तैंतीस सागर पानी की बूँद नहीं, आहार का कण नहीं, शीतलता का पार नहीं। शीतलता वह शीतलता! आहाहा! वह तो एक शरीर सहन करे, तथापि आयुष्य हो, वहाँ तक उसका कुछ नहीं होता। आहाहा! तथापि उस समय सम्यग्दृष्टि.. आहाहा! ऐसी सातवीं नरक की प्रतिकूलता को जाननेयोग्य मानता है। उसके प्रति द्वेष (नहीं होता कि) यह प्रतिकूल क्यों? अब अनुकूल प्रकृति आवे तो ठीक (ऐसा नहीं होता) आहाहा! एक ओर सातवें नरक का नारकी तथा एक ओर रावण! स्फटिकमणि का बँगला! दोनों समान है। आहाहा! दोनों पुद्गल के नाटक हैं। आहाहा! उनमें प्रभु आत्मा कहीं आया नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार बन्ध में पड़कर पराधीन बनकर... आहाहा! संसार के दुःख भोगते हैं,.. यह स्फटिकमणि के बँगले और हजारों रानियाँ खम्मा.. खम्मा.. करे। आहा! दुःखी है। अरे! यह दृष्टि है। दृष्टि उसे स्वीकार करे कि मुझे अनुकूल है। उस दृष्टि का स्वीकार (करे) कि सातवें नरक का नारकी कहे, यह मुझे प्रतिकूल है। तो कहता है, नहीं। आहाहा! यहाँ तृषा लगे वहाँ ठण्डा बर्फ का पानी, मौसम्बी का रस मिले, वहाँ तैंतीस सागर तक (पानी की एक) बूँद नहीं मिले, तथापि वह तो प्रकृति का फल है, प्रभु! आहाहा! वह जड़ का संसार है। उसमें प्रभु आत्मा नहीं है। आत्मा उससे पृथक् है। आहाहा! ऐसे भान में... आहाहा! उसे पराधीनता नहीं होती और अज्ञानी बन्ध में पड़कर पराधीनता (का) दुःख भोगता है।

और जो ज्ञानी हो, इतना आया, देखा! उसके साथ.. सातवें नरक की प्रतिकूलता (होवे) और रावण की स्फटिकरत्न के मकान की अनुकूलता! आहाहा! ज्ञानी होता है, वह उसके साथ कभी भी राग तथा संसर्ग नहीं करता। कभी (नहीं करता)। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञाता-दृष्टा रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाननेवाला-देखनेवाला (साथ में) आनन्द है न! आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. अनन्त गुण की व्यक्तता आंशिक प्रगट हो गयी है। आहाहा! अनन्त गुण की आंशिक व्यक्तता प्रगट हुई है। उसके अस्तित्व के स्वामीरूप से इस बात का स्वामी नहीं होता, इसका मालिक नहीं होता, इसे ज्ञातादृष्टारूप से जानता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)